कबीर-दोहे

1

1 : गुरुदेव का अंग

राम–नाम कै पटंतरै, देबे कौ कछु नांहि ।
क्या ले गुर संतोषिए, हौंस रही मन मांहि ।।1।।
भावार्थ – सद्गुरु ने मुझे राम का नाम पकडा दिया है । मेरे पास ऐसा क्या है उस
सममोल का, जो गुरु को दूँ ?क्या लेकर सन्तोष करूँ उनका ?
मन की अभिलाषा मन में ही रह गयी कि, क्या दक्षिणा चढाऊँ ?
वैसी वस्तु कहाँ से लाऊँ ?
सतगुरु लई कमांण करि, बाहण लागा तीर ।
एक जु बाह्या प्रीति सूं, भीतरि रह्या शरीर ।।2।।
भावार्थ – सदगुरु ने कमान हाथ में ले ली, और शब्द के तीर वे लगे चलाने ।
एक तीर तो बडी प्रीति से ऐसा चला दिया लक्ष्य बनाकर कि,
मेरे भीतर ही वह बिंध गया, बाहर निकलने का नहीं अब ।
सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार ।
लोचन अनंत उघाडिया, अनंत–दिखावणहार ।।3।।
भावार्थ – अन्त नहीं सद्गुरु की महिमा का, और अन्त नहीं उनके किये उपकारों का ,
मेरे अनन्त लोचन खोल दिये, जिनसे निरन्तर मैं अनन्त को देख रहा हूँ ।

2

बलिहारी गुर आपणैं, द्यौंहाडी कै बार ।
जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार ।।4।।
भावार्थ – हर दिन कितनी बार न्यौछावर करूँ अपने आपको सद्गुरू पर,
जिन्होंने एक पल में ही मुझे मनुष्य से परमदेवता बना दिया,
और तदाकार हो गया मैं ।

गुरु गोविन्द दोऊ खडे, काके लागूं पायं ।
बलिहारी गुरु आपणे, जिन गोविन्द दिया दिखाय ।।5।।
भावार्थ – गुरु और गोविन्द दोनों ही सामने खडे हैं , दुविधा में पड गया हूँ कि
किसके पैर पकडूं ॐ
सद्गुरु पर न्यौछावर होता हूं कि, जिसने गोविन्द को सामने खडाकर दिया,
गोविनद से मिला दिया ।
ना गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव ।
दुन्यूं बूडे धार मैं, चढि पाथर की नाव ।।6।।

भावार्थ – लालच का दाँव दोनों पर चल गया , न तो सच्चा गुरु मिला और न शिष्य ही जिज्ञासु बन पाया | पत्थर की नाव पर चढकर दोनों ही मझधार में डूब गये |

3

पीछैं लागा जाइ था, लोक बेद के साथि |
आगैं थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि ||7||

भावार्थ – मैं भी औरों की ही तरह भटक रहा था, लोक–वेद की गलियों में | मार्ग में गुरु मिल गये सामने आते हुए और ज्ञान का दीपक पकडा दिया मेरे हाथ में | इस उजेले में भटकना अब कैसा ?

`कबीर' सतगुर ना मिल्या, रही अधूरी सीष |
स्वांग जती का पहरि करि, घरि घरि माँगे भीष ||8||

भावार्थ – कबीर कहते हैं –उनकी सीख अधूरी ही रह गयी कि जिन्हें सद्गुरु नहीं मिला | सन्यासी का स्वांग रचकर, भेष बनाकर घर–घर भीख ही माँगते फिरते हैं वे |

सतगुरु हम सूं रीझि करि, एक कह्या परसंग |
बरस्या बादल प्रेम का, भींजि गया सब अंग ||9||

भावार्थ – एक दिन सद्गुरु हम पर ऐसे रीझे कि एक प्रसंग कह डाला, रस से भरा हुआ | और, प्रेम का बादल बरस उठा, अंग–अंग भीग गया उस वर्षा में |

4

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान |
सीस दिये जो गुर मिलै, तो भी सस्ता जान ||10||

भावार्थ – यह शरीर तो बिष की लता है, बिषफल ही फलेंगे इसमें | और, गुरु तो अमृत की खान है | सिर चढा देने पर भी सद्गुरु से भेंट हो जाय, तो भी यह सौदा सस्ता ही है |

5

2 : : सुमिरण का अंग

भगति भजन हरि नांव है, दूजा दुक्ख अपार |
मनसा बाचा क्रमनां, `कबीर' सुमिरण सार ||1||

भावार्थ – हरि का नाम–स्मरण ही भक्ति है और वही भजन सच्चा है ल भक्ति के नाम पर सारी साधनाएं केवल दिखावा है, और अपार दुःख की हेतु भी | पर स्मरण वह होना चाहिए मन से, बचन से और कर्म से, और यही नाम–स्मरण का सार है ॐ

कबीर कहता जात हूँ, सुणता है सब कोई |
राम करें भल होइगा, नहितर भला न होई ||2||

भावार्थ – मैं हमेशा कहता हूँ, रट लगाये रहता हूँ, सब लोग सुनते भी रहते हैं – यही कि राम का स्मरण करने से ही भला होगा, नहीं तो कभी भला होनेवाला नहीं |

पर राम का स्मरण ऐसा कि वह रोम—रोम में रम जाय ।
तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूँ ।
वारी फेरी बलि गई ,जित देखौं तित तूं ।।3।।
भावार्थ — तू, ही है, तू ही है' यह करते—करते मैं तू ही हो गयी,

6

`हूँ' मुझमें कहीं भी नहीं रह गयी ।
उसपर न्यौछावर होते—होते मैं समर्पित हो गयी हूँ ।
जिधर भी नजर जाती है उधर तू—ही—तू दीख रहा है ।
`कबीर' सूता क्या करै, काहे न देखै जागि ।
जाको संग तैं बीछुड्या, ताही के संग लागि ।।4।।
भावार्थ — कबीर अपने आपको चेता रहे हैं, अच्छा हो कि दूसरे भी चेत जायं ।
अरे, सोया हुआ तू क्या कर रहा है ? जाग जा और अपने साथियों को देख, जो जाग गये हैं ।
यात्रा लम्बी है, जिनका साथ बिछड गया है और तू पिछड गया है, उनके साथ तू फिर लग जा ।
जिहि घटि प्रीति न प्रेम—रस, फुनि रसना नहीं राम ।
ते नर इस संसार में, उपजि खये बेकाम ।।5।।
भावार्थ — जिस घट में, जिसके अन्तर में न तो प्रीति है और न प्रेम का रस ।
और जिसकी रसना पर रामनाम भी नहीं — इस दुनिया में बेकार ही पैदा हुआ वह और बरबाद हो गया ।

7

`कबीर' प्रेम न चषिया, चषि न लीया साव ।
सूने घर का पाहुंणां , ज्यूं आया त्यूं जाव ।।6।।
भावार्थ — कबीर धिक्कारते हुए कहते हैं — जिसने प्रेम का रस नहीं चखा,
और चखकर उसका स्वाद नहीं लिया, उसे क्या कहा जाय ?
वह तो सूने घर का मेहमान है, जैसे आया था वैसे ही चला गया ॐ
राम पियारा छांडि करि, करै आन का जाप ।
बेस्यां केरा पूत ज्यूँ, कहै कौन सू बाप ।।7।।
भावार्थ — प्रियतम राम को छोडकर जो दूसरे देवी—देवताओं को जपता है,
उनकी आराधना करता है, उसे क्या कहा जाय ?
वेश्या का पुत्र किसे अपना बाप कहे ? अनन्यता के बिना कोई गति नहीं ।
लूटि सकै तौ लूटियौ, राम—नाम है लूटि ।
पीछैं हो पछिताहुगे, यहु तन जैहै छूटि ।।8।।
भावार्थ — अगर लूट सको तो लूट लो, जी भर लूटो——यह राम नाम की लूट है ।
न लूटोगे तो बुरी तरह पछताओगे, क्योंकि तब यह तन छूट जायगा ।

8

लंबा मारग, दूरि घर, विकट पंथ, बहु मार ।
कहौ संतो, क्यूं पाइये, दुर्लभ हरि–दीदार ।। 9।।
भावार्थ – रास्ता लम्बा है, और वह घर दूर है, जहाँ कि पहुँचना है । लम्बा ही नहीं,
उबड–खाबड भी है । कितने ही बटमार वहाँ पीछे लग जाते हैं ।
संत भाइयों, बताओ तो कि हरि का वह दुर्लभ दीदार तब कैसे मिल सकता है ?
`कबीर' राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ ।
फूटा नग ज्यूँ जोडि मन, संधे संधि मिलाइ ।।10।।
भावार्थ – कबीर कहते हैं– अमृत–जैसे गुणों को गाकर तू अपने राम को रिझा ले ।
राम से तेरा मन–बिछुड गया है, उससे वैसे ही मिल जा ,
जैसे कोई फूटा हुआ नग सन्धि–से–सन्धि मिलाकर एक कर लिया जाता है ।

3 : : विरह का अंग

अंदेसडा न भाजिसी, संदेसौ कहियां ।
कै हरि आयां भाजिसी, कै हरि ही पास गयां ।।1।।
भावार्थ – संदेसा भेजते–भेजते मेरा अंदेशा जाने का नहीं,
अन्तर की कसक दूर होने की नहीं,
यह कि प्रियतम मिलेगा या नहीं, और कब मिलेगाल्ल हाँ यह अंदेशा दूर हो सकता है
दो तरह से – या तो हरि स्वयं आजायं, या मैं किसी तरह हरि के पास पहुँच जाऊँ
यहु तन जालों मसि करों, लिखों राम का नाउं ।
लेखणि करूं करंक की, लिखि–लिखि राम पठाउं ।।2।।
भावार्थ – इस तन को जलाकर स्याही बना लूँगी, और जो कंकाल रह जायगा,
उसकी लेखनी तैयार कर लूँगी ।
उससे प्रेम की पाती लिख–लिखकर अपने प्यारे राम को भेजती रहूँगी ।
ऐसे होंगे वे मेरे संदेसे ।
बिरह–भुवंगम तन बसै, मंत्र न लागै कोइ ।
राम–बियोग ना जिबै जिवै तो बौरा होइ ।।3।।
भावार्थ – बिरह का यह भुजंग अंतर में बस रहा है, डसता ही रहता है सदा,

कोई भी मंत्र काम नहीं देता । राम का वियोगी जीवित नहीं रहता , और जीवित रह
भी जाय तो वह बावला हो जाता है ।
सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त ।
और न कोई सुणि सकै, कै साई के चित्त ।।4।।
भावार्थ – शरीर यह रबाब सरोद बन गया है –एक–एक नस तांत हो गयी है ।
और बजानेवाला कौन है इसका ? वही विरह,
इसे या तो वह साई सुनता है, या फिर बिरह में डूबा हुआल्ल यह चित्त ।
अंषडियां झाई पडीं, पंथ निहारि–निहारि ।

जीभडियाँ छाला पड्या,   राम पुकारि-पुकारि ||5||
भावार्थ - बाट जोहते-जोहते आंखों में झाई पड गई हैं,
राम को पुकारते-पुकारते जीभ में छाले पड गये हैं|

[पुकार यह आर्त्त न होकर विरह के कारण तप्त हो गयी है..और इसीलिए जीभ पर छाले पड गये हैं |]

इस तन का दीवा करौ,   बाती मेल्यूं जीव |
लोही सींची तेल ज्यूं,   कब मुख देखौं पीव ||6||
भावार्थ - इस तन का दीया बना लूं,   जिसमें प्राणों की बत्ती हो ॐ

और, तेल की जगह तिल-तिल बलता रहे रक्त का एक-एक कण |
कितना अच्छा कि उस दीये में प्रियतम का मुखडा कभी दिखायी दे जाय |

`कबीर' हँसणां दूरि करि,   करि रोवण सौं चित्त |
बिन रोयां क्यूं पाइए,   प्रेम पियारा मित्त ||7||
भावार्थ - कबीर कहते हैं -
वह प्यारा मित्र बिन रोये कैसे किसीको मिल सकता है ?

[रोने-रोने में अन्तर है | दुनिया को किसी चीज के लिए रोना,   जो नहीं मिलती या मिलने पर खो जाती है,   और राम के विरह का रोना,   जो सुखदायक होता है|]

जौ रोऊँ तौ बल घटै,   हँसौं तो राम रिसाइ |
मन ही माहि बिसूरणा,   ज्यूँ घुँण काठहि खाइ ||8||
भावार्थ - अगर रोता हूँ तो बल घट जाता है,   विरह तब कैसे सहन होगा ?
और हँसता हूं तो मेरे राम रिसा जायंगे | तो न रोते बनता है और न हँसते|
मन-ही-मन बिसूरना ही अच्छा,   जिससे सबकुछ खौखला हो जाय,   जैसे काठ घुन

हांसी खेलौं हरि मिलै,   कोण सहै षरसान |
काम क्रोध त्रिष्णां तजै,   तोहि मिलै भगवान ||9||
भावार्थ - हँसी-खेल में ही हरि से मिलन हो जाय, तो कौन व्यथा की शान पर चढना चाहेगा
भगवान तो तभी मिलते हैं,   जबकि काम,   क्रोध और तृष्णा को त्याग दिया जाय |

पूत पियारौ पिता कौं,   गौहनि लागो धाइ |
लोभ-मिठाई हाथि दे,   आपण गयो भुलाइ ||10||
भावार्थ - पिता का प्यारा पुत्र दौडकर उसके पीछे लग गया |
हाथ में लोभ की मिठाई देदी पिता ने |
उस मिठाई में ही रम गया उसका मन |
अपने-आपको वह भूल गया,   पिता का साथ छूट गया |

परबति परबति मैं फिर्‌या,   नैन गँवाये रोइ |
सो बूटी पाऊँ नहीं,   जातैं जीवनि होइ ||11||
भावार्थ - एक पहाड से दूसरे पहाड पर मैं घूमता रहा,   भटकता फिरा,   रो-रोकर

आँखे भी गवां दीं |
वह संजीवन बूटी कहीं नहीं मिल रही, जिससे कि जीवन यह जीवन बन जाय,
व्यर्थता बदल जाय सार्थकता में |
सुखिया सब संसार है, खावै और सौवे |
दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रौवे ||12||

13
भावार्थ - सारा ही संसार सुखी दीख रहा है, अपने आपमें मस्त है वह,

खूब खाता है और खूब सोता है |
दुखिया तो यह कबीरदास है, जो आठों पहर जागता है और रोता ही रहता है |
[धन्य है ऐसा जागना, ओर ऐसा रोना ॐकिस काम का, इसके आगे खूब खाना और खूब सोनाॐ]

जा कारणि में ढूँढती, सनमुख मिलिया आइ |
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सकौ पाइ ||13||
भावार्थ - जीवात्मा कहती है -
जिस कारण मैं उसे इतने दिनों से ढूँढ रही थी,
वह सहज ही मिल गया, सामने ही तो था | पर उसके पैरों को कैसे पकडू ?
मैं तो मैली हूँ, और मेरा प्रियतम कितना उजला ॐ सो, संकोच हो रहा है |
जब मैं था तब हरि नहीं , अब हरि हैं मैं नाहि |
सब अंधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माहि ||14||
भावार्थ - जबतक यह मानता था कि'मैं हूं', तबतक मेरे सामने हरि नहीं थे |
और अब हरि आ प्रगटे, तो मैं नहीं रहा |
अँधेरा और उजेला एकसाथ, एक ही समय, कैसे रह सकते हैं ?
फिर वह दीपक तो अन्तर में ही था |

14
देवल माहैं देहुरी, तिल जे है बिसतार |
माहैं पाती माहि जल, माहैं पूजणहार ||15||
भावार्थ - मन्दिर के अन्दर ही देहरी है एक, विस्तार में तिल के मानिन्द |
वहीं पर पत्ते और फूल चढाने को रखे हैं, और पूजनेवाला भी तो वहीं पर हैं |
[अन्तरात्मा में ही मंदिर है, वहीं पर देवता है, वहीं पूजा की सामग्री है और पुजारी भी वहीं मौजूद है |]

15

4 : :जर्णा का अंग

भारी कहौ तो बहु डरौ, हलका कहूं तौ झूठ |

मैं का जाणौ राम कूं, नैनूं कबहूँ न दीठ ||1||
भावार्थ - अपने राम को मैं यदि भारी कहता हूँ, तो डर लगता है,
इसलिए कि कितना भारी है वह |
और, उसे हलका कहता हूँ तो यह झूठ होगा | मैं क्या जानूँ उसे कि वह कैसा है,
इन आँखों से तो उसे कभी देखा नहीं |सचमुच वह अनिर्वचनीय है,
वाणी की पहुँच नहीं उस तक |
दीठा है तो कस कहूँ, कह्या न को पतियाय |
हरि जैसा है तैसा रहो, तू हरषि-हरषि गुण गाइ ||12||
भावार्थ - उसे यदि देखा भी है, तो वर्णन कैसे करूँ उसका ?
वर्णन करता हूँ तो कौन विश्वास करेगा ? हरि जैसा है, वैसा है |
तू तो आनन्द में मग्न होकर उसके गुण गाता रह
वर्णन के ऊहापोह में मन को न पडने दे |

पहुँचेंगे तब कहैंगे ,उमडैंगे उस ठांइ |
अजहूँ बेरा समंद मैं, बोलि बिगूचैं कांइ ||3||

16

भावार्थ - जब उस ठौर पर पहुँच जायंगे, तब देखेंगे कि क्या कहना है,
अभी तो इतना ही कि वहाँ आनन्द-ही-आनन्द उमडेगा, और उसमें यह मन खूब खेलेगा|
जबकि बेडा बीच समुद्र में है, तब व्यर्थ बोल-बोलकर क्यों किसी को दुविधा
में डाला जाय कि - -उस पार हम पहुँच गये हैं ॐ

17

5 : : पतिव्रता का अंग

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर |
तेरा तुझकौं सौंपता, क्या लागै है मोर ||1||
भावार्थ - मेरे साई, मुझमें मेरा तो कुछ भी नहीं,जो कुछ भी है, वह सब तेरा ही है|

तब,तेरी ही वस्तु तुझे सौंपते मेरा क्या लगता है, क्या आपत्ति हो सकती है मुझे ?
`कबीर' रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ |
नैनूं रमैया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ ||2||
भावार्थ - कबीर कहते हैं -आँखों में काजल कैसे लगाया जाय,
जबकि उनमें सिन्दूर की जैसी रेख उभर आयी है ?मेरा रमैया नैनों में रम गया है,

उनमें अब किसी और को बसा लेने की ठौर नहीं रही|
[सिन्दूर की रेख से आशय है विरह-वेदना से रोते-रोते आँखें लाल हो गयी हैं|]
`कबीर' एक न जाण्यां, तो बहु जांण्या क्या होइ |

एक तैं सब होत है, सब तैं एक न होइ ||3||

18

भावार्थ - कबीर कहते हैं -

यदि उस एक को न जाना, तो इन बहुतों को जानने से क्या हुआ ॐ

क्योंकि एक का ही तो यह सारा पसारा है, अनेक से एक थोडे ही बना है |

जबलग भगति सकामता, तबलग निर्फल सेव |

कहै कबीर' वै क्यूं मिलैं, निहकामी निज देव ||4||

भावार्थ -भक्ति जबतक सकाम है, भगवान की सारी सेवा तबतक निष्फल ही है |

निष्कामी देव से सकामी साधक की भेंट कैसे हो सकती है ?

`कबीर' कलिजुग आइ करि, कीये बहुत जो मीत |

जिन दिलबाँध्या एक सूं, ते सुखु सोवै निचींत ||5||

भावार्थ - कबीर कहते हैं --

कलियुग में आकर हमने बहुतों को मित्र बना लिया,

क्योंकि ह्यनकलीह मित्रों की कोई कमी नहीं |

पर जिन्होंने अपने दिल को एक से ही बाँध लिया,

वे ही निश्चिन्त सुख की नींद सो सकते हैं |

`कबीर' कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं |

गले राम की जेवडी, जित कैंचे तित जाउं ||6||

भावार्थ - कबीर कहते हैं--मैं तो राम का कुत्ता हूँ, और नाम मेरा मुतिया ह्यमोतीह है

19

गले में राम की जंजीर पडी हुई हैल्ल उधर ही चला जाता हूँ जिधर वह ले जाता है|

[प्रेम के ऐसे बंधन में मौज-ही-मौज है |]

पतिबरता मैली भली, काली, कुचिल, कुरूप |

पतिबरता के रूप पर, बारौ कोटि स्वरूप ||7||

भावार्थ - पतिव्रता मैली ही अच्छी, काली मैली-फटी साडी पहने हुए और कुरूप |

तो भी उसके रूप पर मैं करोंडों सुन्दरियों को न्यौछावर कर देता हूँ |

पतिबरता मैली भली, गले काँच को पोत |

सब सखियन में यों दिपै , ज्यों रवि ससि की जोत ||8||

भावार्थ - पतिव्रता मैली ही अच्छी, जिसने सुहाग के नाम पर काँच के कुछ गुरिये पहन रखे हैं |

फिर भी अपनी सखी-सहेलियों के बीच वह ऐसी दिप रही है,

जैसे आकाश में सूर्य और चन्द्र की ज्योति जगमगा रही हो |

20

6 : :कामी का अंग

परनारी राता फिरैं, चोरी बिढिता खाहिं ।
दिवस चारि सरसा रहै, अंति समूला जाहिं ।।1।।
भावार्थ – परनारी से जो प्रीति जोडते हैं और चोरी की कमाई खाते हैं,
भले ही वे चार दिन फूले–फूले फिरें ।किन्तु अन्त में वे जडमूल से नष्ट
हो जाते हैं ।
परनारि का राचणौं, जिसी लहसण की खानि ।
खूणैं बैसि र खाइए, परगट होइ दिवानि ।।2।।
भावार्थ – परनारी का साथ लहसुन खाने के जैसा है,
भले ही कोई किसी कोने में छिपकर खाये, वह अपनी बास से प्रकट हो जाता है ।
भगति बिगाडी कामियाँ, इन्द्री केरै स्वादि ।
हीरा खोया हाथ थैं, जनम गँवाया बादि ।।3।।
भक्ति को कामी लोगों ने बिगाड डाला है, इन्द्रियों के स्वाद में पडकर,
और हाथ से हीरा गिरा दिया, गँवा दिया । जन्म लेना बेकार ही रहा उनका ।
कामी अमी न भावई, विष ही कौं लै सोधि ।
कुबुद्धि न जाई जीव की, भावै स्यंभ रहौ प्रमोधि ।।4।।

भावार्थ – कामी मनुष्य को अमृत पसंद नहीं आता, वह तो जगह–जगह विष को
ही खोजता रहता है ।
कामी जीव की कुबुद्धि जाती नहीं, चाहे स्वयं शम्भु भगवान् ही उपदेश दे–

देकर उसे समझावें ।
कामी लज्या ना करै, मन माहें अहिलाद ।
नींद न माँगै सांथरा, भूख न माँगै स्वाद ।।5।।
भावार्थ – कामी मनुष्य को लज्जा नहीं आती कुमार्ग पर पैर रखते हुए,
मन में बडा आह्लाद होता है उसे ।
नींद लगने पर यह नहीं देखा जाता कि बिस्तरा कैसा है,
और भूखा मनुष्य स्वाद नहीं जानता, चाहे जो खा लेता है ।
ग्यानी मूल गँवाइया, आपण भये करता ।
ताथैं संसारी भला, मन में रहै डरता ।।6।।
ज्ञानी ने अहंकार में पडकर अपना मूल भी गवाँ दिया,
वह मानने लगा कि मैं ही सबका कर्ता–धर्त्ता हूँ ।
उससे तो संसारी आदमी ही अच्छा, क्योंकि वह डरकर तो चलता है कि
कहीं कोई भूल न हो जाय ।

7 : : चांणक का अंग

इहि उदर कै कारणे, जग जाच्यों निस जाम ।

स्वामीं–पणो जो सिरि चढ्यो, सर्‌यो न एको काम ||1||
भावार्थ – इस पेट के लिए दिन–रात साधु का भेष बनाकर वह माँगता फिरा,
और स्वामीपना उसके सिर पर चढ गया |
पर पूरा एक भी काम न हुआ – न तो साधु हुआ और न स्वामी ही |
स्वामी हूवा सीतका, पैकाकार पचास |
रामनाम कांठै रह्या, करै सिषां की आस ||2||
भावार्थ – स्वामी आज–कल मुफ्त में, या पैसे के पचास मिल जाते हैं,
मतलब यह कि सिद्धियाँ और चमत्कार दिखाने और फैलाने वाले स्वामी
रामनाम को वे एक किनारे रख देते हैं, और शिष्यों से आशा करते हैं
लोभ में डूबकर |
कलि का स्वामी लोभिया, पीतलि धरी खटाइ |
राज–दुबारां यौ फिरै, ज्यूँ हरिहाई गाइ ||3||

भावार्थ – कलियुग के स्वामी बडे लोभी हो गये हैं, और उनमें विकार आ गया है,

23

जैसे पीतल की बटलोई में खटाई रख देने से |
राज–द्वारों पर ये लोग मान–सम्मान पाने के लिए घूमते रहते हैं,
जैसे खेतों में बिगडैल गायें घुस जाती हैं |
कलि का स्वामी लोभिया, मनसा धरी बधाइ |
दैंहि पईसा ब्याज कौं, लेखां करतां जाइ ||4||
भावार्थ – कलियुग का यह स्वामी कैसा लालची हो गया है ॐलोभ बढता ही जाता है इसका |
ब्याज पर यह पैसा उधार देता है और लेखा–जोखा करने में सारा समय नष्ट कर देता है|
`कबीर' कलि खोटी भई, मुनियर मिलै न कोइ |
लालच लोभी मसकरा, तिनकूँ आदर होइ ||5||
भावार्थ – कबीर कहते हैं – बहुत बुरा हुआ इस कलियुग में,
कहीं भी आज सच्चे मुनि नहीं मिलते |
आदर हो रहा है आज लालचियों का, लोभियों का और मसखरों का |
ब्राह्मण गुरू जगत का, साधू का गुरू नाहि |
उरझि–पुरझि करि मरि रह्या, चारिउँ बेदां माहि ||6||
भावार्थ – ब्राह्मण भले ही सारे संसार का गुरू हो, पर वह साधु का गुरु नहि हो सकता

24

वह क्या गुरु होगा, जो चारों वेदों में उलझ–पुलझकर ही मर रहा है |
चतुराई सूवै पढी, सोई पंजर मांहि |
फिरि प्रमोधै आन कौं, आपण समझै नाहि ||7||
भावार्थ – चतुराई तो रटते–रटते तोते को भी आ गई, फिर भी वह पिंजडे में कैद है |

औरों को उपदेश देता है, पर खुद कुछ भी नहीं समझ पाता ।
तीरथ करि करि जग मुवा, डूँघे पाणीं न्हाइ ।
रामहि राम जपंतडां, काल घसीट्यां जाइ ।।8।।
भावार्थ – कितने ही ज्ञानाभिमानी तीर्थों में जा–जाकर और डुबकियाँ लगा–लगाकर मर गये
जीभ से रामनाम का कोरा जप करने वालों को काल घसीट कर ले गया ।
`कबीर' इस संसार कौं, समझाऊँ कै बार ।
पूँछ जो पकडै भेड की, उतर्या चाहै पार ।।9।।
भावार्थ – कबीर कहते हैं––कितनी बार समझाऊँ मैं इस बावली दुनिया को ॐ
भेड की पूँछ पकडकर पार उतरना चाहते हैं ये लोग ॐ
[अंध–रूढियों में पडकर धर्म का रहस्य समझना चाहते हैं ये लोग ॐ]

25

`कबीर' मन फूल्या फिरैं, करता हूँ मैं ध्रंम ।
कोटि क्रम सिरि ले चल्या, चेत न देखै भ्रम ।।10।।
भावार्थ – कबीर कहते हैं –
फूला नहीं समा रहा है वह कि मैं धर्म करता हूँ, धर्म पर चलता हूँ,
चेत नहीं रहा कि अपने इस भ्रम को देख ले कि धर्म कहाँ है,
जबकि करोडों कर्मो का बोझ ढोये चला जा रहा है ॐ

26

8 : : रस का अंग

––––––––––––––––––––––––––

`कबीर' भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ ।
सिर सौंपे सोई पिवै, नहीं तौ पिया न जाई ।।1।।
भावार्थ – कबीर कहते हैं –कलाल की भट्ठी पर बहुत सारे आकर बैठ गये हैं,
पर इस मदिरा को एक वही पी सकेगा, जो अपना सिर कलाल को खुशी–खुशी सौंप देगा,
नहीं तो पीना हो नहीं सकेगा ।
[कलाल है सद्गुरु, मदिरा है प्रभु का प्रेम–रस और सिर है अहंकार ।]
`कबीर' हरि–रस यौं पिया, बाकी रही न थाकि ।
पाका कलस कुंभार का, बहुरि न चढई चाकि ।।2।।
भावार्थ – कबीर कहते हैं ––

हरि का प्रेम–रस ऐसा छककर पी लिया कि कोई और रस पीना बाकी नहीं रहा ।
कुम्हार का बनाया जो घडा पक गया, वह दोबारा उसके चाक पर नहीं चढता ।
[मतलब यह कि सिद्ध हो जाने पर साधक पार कर जाता है जन्म और मरण के चक्र को।]

27

हरि–रस पीया जाणिये, जे कबहुँ न जाइ खुमार ।

मैंमंता घूमत रहै, नाहीं तन की सार ||3||
भावार्थ - हरि का प्रेम-रस पी लिया, इसकी यही पहचान है कि वह नशा अब उतरने का
नहीं, चढा सो चढा |
अपनापन खोकर मस्ती में ऐसे घूमना कि शरीर का भी मान न रहे |
सबै रसाइण मैं किया, हरि सा और न कोइ |
तिल इक घट मैं संचरै, तौ सब तन कंचन होई ||4||
भावार्थ - सभी रसायनों का सेवन कर लिया मैंने,
मगर हरि-रस-जैसी कोई और रसायन नहीं पायी |
एक तिल भी घट में, शरीर में, यह पहुँच जाय,
तो वह सारा ही कंचन में बदल जाता है |
[मैल जल जाता है वासनाओं का, और जीवन अत्यंत निर्मल हो जाता है |]

28

9 : : माया का अंग

`कबीर' माया पापणी, फंध ले बैठी हाटि |
सब जग तौ फंधै पड्या, गया कबीरा काटि ||1||
भावार्थ - यह पापिन माया फन्दा लेकर फँसाने को बाजार में आ बैठी है |
बहुत सारों पर फंन्दा डाल दिया है इसने |पर कबीर उसे काटकर साफ बाहर निकल आया
हरि भक्त पर फंन्दा डालनेवाली माया खुद ही फँस जाती है, और वह सहज ही उसे काट
कर निकल आता है |]
`कबीर' माया मोहनी, जैसी मीठी खांड |
सतगुरु की कृपा भई, नहीं तौ करती भांड ||2||
भावार्थ - कबीर कहते हैं -यह मोहिनी माया शक्कर-सी स्वाद में मीठी लगती है,
मुझ पर भी यह मोहिनी डाल देती पर न डाल सकी |
सतगुरु की कृपा ने बचा लिया, नहीं तो यह मुझे भांड बना-कर छोडती |
जहाँ-तहाँ चाहे जिसकी चाटुकारी मैं करता फिरता |
माया मुई न मन मुवा, मरि-मरि गया सरीर |
आसा त्रिष्णां ना मुई, यों कहि गया`कबीर' ||3||

29

भावार्थ - कबीर कहते हैं --न तो यह माया मरी और न मन ही मरा,
शरीर ही बार-बार गिरते चले गये |मैं हाथ उठाकर कहता हूँ |
न तो आशा का अंत हुआ और न तृष्णा का ही |
`कबीर' सो धन संचिये, जो आगैं कूं होइ |
सीस चढावें पोटली, ले जात न देख्या कोइ ||4||
भावार्थ - कबीर कहते हैं, --उसी धन का संचय करो न, जो आगे काम दे |
तुम्हारे इस धन में क्या रखा है ?
गठरी सिर पर रखकर किसी को भी आजतक ले जाते नहीं देखा |

त्रिसणा सींची ना बुझै, दिन दिन बधती जाइ |
जवासा के रूष ज्यूं, घण मेहां कुमिलाइ ||5||
भावार्थ - कैसी आग है यह तृष्णा की ॐज्यौ-ज्यौ इसपर पानी डालो, बढती ही जाती है |
जवासे का पौधा भारी वर्षा होने पर भी कुम्हला तो जाता है, पर मरता नहीं,
फिर हरा हो जाता है |
कबीर जग की को कहै, भौजलि, बुडै दास |
पारब्रह्म पति छाँडि करि, करैं मानि की आस ||6||

भावार्थ - कबीर कहते हैं--
दुनिया के लोगों की बात कौन कहे, भगवान के भक्त भी भवसागर में डूब जाते हैं |
इसीलिए परब्रह्म स्वामी को छोडकर वे दूसरों से मान-सम्मान पाने की आशा करते हैं|
माया तजी तौ क्या भया, मानि तजी नहीं जाइ |
मानि बडे मुनियर गिले, मानि सबनि को खाइ ||7||
भावार्थ - क्या हुआ जो माया को छोड दिया, मान-प्रतिष्ठा तो छोडी नहीं जा रही |
बडे-बडे मुनियों को भी यह मान-सम्मान सहज ही निगल गया |
यह सबको चबा जाता है, कोई इससे बचा नहीं |
`कबीर' इस संसार का, झूठा माया मोह |
जिहि घरि जिता बधावणा, तिहि घरि तिता अंदोह ||8||
भावार्थ - कबीर कहते हैं -- झूठा है संसार का सारा माया और मोह |
सनातन नियम यह है कि -

जिस घर में जितनी ही बधाइयाँ बजती हैं, उतनी ही विपदाएँ वहाँ आती हैं |
बुगली नीर बिटालिया, सायर चढ्या कलंक |
और पखेरू पी गये , हंस न बोवे चंच ||9||

भावार्थ - बगुली ने चोंच डुबोकर सागर का पानी जूठा कर डाला ॐ
सागर सारा ही कलंकित हो गया उससे |और दूसरे पक्षी तो उसे पी-पीकर उड गये,
पर हंस ही ऐसा था, जिसने अपनी चोंच उसमें नहीं डुबोई |
`कबीर' माया जिनि मिले, सौ बरियाँ दे बाँह |
नारद से मुनियर मिले, किसो भरोसौ त्याँह ||10||
भावार्थ - कबीर कहते हैं -अरे भाई, यह माया तुम्हारे गले में बाहें डालकर भी सौ-सौ
बार बुलाये, तो भी इससे मिलना-जुलना अच्छा नहीं |
जबकि नारद-सरीखे मुनिवरों को यह समूचा ही निगल गई, तब इसका विश्वास क्या ?

10 : : कथनी-करणी का अंग

जैसी मुख तैं नीकसै, तैसी चालै चाल |
पारब्रह्म नेडा रहै, पल में करै निहाल ||1||
भावार्थ – मुँह से जैसी बात निकले, उसीपर यदि आचरण किया जाय, वैसी ही चाल चली जाय,
तो भगवान् तो अपने पास ही खडा है, और वह उसी क्षण निहाल कर देगा |
पद गाए मन हरषियां, साषी कह्यां अनंद |
सो तत नांव न जाणियां, गल में पडिया फंद ||2||
भावार्थ – मन हर्ष में डूब जाता है पद गाते हुए, और साखियाँ कहने में भी आनन्द

आता है |
लेकिन सारतत्व को नहीं समझा, और हरिनाम का मर्म न समझा, तो गले में फन्दा ही
पडनेवाला है |
मैं जाण्यूं पढिबौ भलो, पढबा थैं भलौ जोग |
राम–नाम सूं प्रीति करि, भल भल नींदौ लोग ||3||
भावार्थ – पहले मैं समझता था कि पोथियों का पढना बडा अच्छा है, फिर सोचा कि पढने
से योग–साधन कहीं अच्छा है | पर अब तो इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि रामनाम
से ही सच्ची प्रीति की जाय, भले ही अच्चै–अच्छे लोग मेरी निन्दा करें |

33

`कबीर' पढिबो दूरि करि, पुस्तक देइ बहाइ |
बावन आषिर सोधि करि, `रैरै'‚ममै' चित्त लाइ ||4||
भावार्थ – कबीर कहते हैं ––पढना लिखना दूर कर, किताबों को पानी में बहा दे |
बावन अक्षरों में से तू तो सार के ये दो अक्षर ढूँढकर ले ले––`रकार' और
‚मकार'| और इन्हींमें अपने चित्त को लगा दे |
पोथी पढ पढ जग मुवा, पंडित भया न कोय |
ऐकै आषिर पीव का, पढै सो पंडित होइ ||5||
भावार्थ – पोथियाँ पढ–पढकर दुनिया मर गई, मगर कोई पण्डित नहीं हुआ |
पण्डित तो वही हो सकता है, जिसने प्रियतम प्रभु का केवल एक अक्षर पढ लिया |
[पाठान्तर है‚ढाई आखर प्रेम का' अर्थात प्रेम शब्द के जिसने ढाई अक्षर पढ

लिये, अपने जीवन में उतार लियर, उसी को पण्डित कहना चाहिए |]
करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि–करि तुंड |
जानें–बूझै कुछ नहीं, यौंहीं आंधां रूंड ||6||
भावार्थ – हमने देखा ऐसों को, जो मुख को ऊँचा करके जोर–जोर से कीर्तन करते हैं |

34

जानते–समझते तो वे कुछ भी नहीं कि क्या तो सार है और क्या असार |
उन्हें अन्धा कहा जाय, या कि बिना सिर का केवल रुण्ड ?

35

11 : : सांच का अंग

लेखा देणां सोहरा, जे दिल सांचा होइ |
उस चंगे दीवान में, पला न पकडै कोइ ||1||
भावार्थ – दिल तेरा अगर सच्चा है, तो लेना–देना सारा आसान हो जायगा |
उलझन तो झूठे हिसाब–किताब में आ पडती है,
जब साई के दरबार में पहुँचेगा, तो वहाँ कोई तेरा पल्ला नहीं पकडेगा ,
क्योंकि सबकुछ तेरा साफ–ही–साफ होगा |
साँच कहूं तो मारिहैं, झूठे जग पतियाइ |
यह जग काली कूकरी, जो छेडै तो खाय ||2||
भावार्थ – सच–सच कह देता हूँ तो लोग मारने दौडेंगे, दुनिया तो झूठ पर ही विश्वास करती है |
लगता है, दुनिया जैसे काली कुतिया है, इसे छेड दिया, तो यह काट खायेगी |
यहु सब झूठी बंदिगी, बरियाँ पंच निवाज |
सांचै मारे झूठ पढि, काजी करै अकाज ||3||
भावार्थ – काजी भाई ॐ तेरी पाँच बार की यह नमाज झूठी बन्दगी है,
झूठी पढ–पढकर तुम सत्य का गला घोंट रहे हो ,

36

और इससे दुनिया की और अपनी भी हानि कर रहे हो |
[क्यों नहीं पाक दिल से सच्ची बन्दगी करते हो ?]
सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप |
जिस हिरदे में सांच है, ता हिरदै हरि आप ||4||
भावार्थ – सत्य की तुलना में दूसरा कोई तप नहीं, और झूठ के बराबर दूसरा पाप नहीं |
जिसके हृदय में सत्य रम गया, वहाँ हरि का वास तो सदा रहेगा ही |
प्रेम–प्रीति का चोलना, पहिरि कबीरा नाच |
तन–मन तापर वारहूँ, जो कोइ बोलै सांच ||5||
भावार्थ – प्रेम और प्रीति का ढीला–ढाला कुर्ता पहनकर कबीर मस्ती में नाच रहा है,
और उसपर तन और मन की न्यौछावर कर रहा है, जो दिल से सदा सच ही बोलता है|
काजी मुल्लां भ्रंमियां, चल्या दुनीं कै साथ |
दिल थैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथ ||6||
भावार्थ – ये काजी और मुल्ले तभी दीन के रास्ते से भटक गये और दुनियादारों के साथ–साथ चलने लगे,
जब कि इन्होंने जिबह करने के लिए हाथ में छुरी पकड ली दीन के नाम पर|

37

साई सेती चोरियां, चोरां सेती गुझ |
जाणैंगा रे जीवणा, मार पडैगी तुझ ||7||
भावार्थ – वाह ॐ क्या कहने हैं, साई से तो तू चोरी और दुराव करता है

और दोस्ती कर ली है चोरों के साथ ॐ
जब उस दरबार में तुझपर मार पडेगी, तभी तू असलियत को समझ सकेगा |
खूब खांड है खीचडी, माहि पड्याँ टुक लूण |
पेडा रोटी खाइ करि, गल कटावे कूण ||8||
भावार्थ – क्या ही बढिया स्वाद है मेरी इस खिचडी का ॐजरा–सा, बस, नमक डाल लिया है
पेडे और चुपडी रोटियाँ खा–खाकर कौन अपना गला कटाये ?

12 : : भ्रम–बिधोंसवा का अंग

जेती देखौ आत्मा, तेता सालिगराम |
साधू प्रतषि देव हैं, नहीं पाथर सूं काम ||1||
भावार्थ – जितनी ही आत्माओं को देखता हूँ, उतने ही शालिग्राम दीख रहे हैं |
प्रत्यक्ष देव तो मेरे लिए सच्चा साधु है |पाषाण की मूर्ति पूजने से क्या
बनेगा मेरा ?
जप तप दीसैं थोथरा, तीरथ ब्रत बेसास |
सूवै सैंबल सेविया, यौं जग चल्या निरास ||2||
भावार्थ – कोरा जप और तप मुझे थोथा ही दिखायी देता है,
और इसी तरह तीर्थों और व्रतों पर विश्वास करना भी |
सुवे ने भ्रम में पडकर सेमर के फूल को देखा, पर उसमें रस न पाकर निराश हो गया

वैसी ही गति इस मिथ्या–विश्वासी संसार की है |
तीरथ तो सब बेलडी, सब जग मेल्या छाइ |
`कबीर' मूल निकंदिया, कौण हलाहल खाइ ||3||
भावार्थ – तीर्थ तो यह ऐसी अमरबेल है, जो जगत रूपी वृक्ष पर बुरी तरह छा गई है |

कबीर ने इसकी जड ही काट दी है, यह देखकर कि कौन विष का पान करे ॐ
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाणि |
दसवां द्वारा देहुरा, तामैं जोति पिछाणि ||4||
भावार्थ – मेरा मन ही मेरी मथुरा है, और दिल ही मेरी द्वारिका है,
और यह काया मेरी काशी है |
दसवाँ द्वार वह देवालय है, जहाँ आत्म–ज्योति को पहचाना जाता है |
[दसवें द्वार से तात्पर्य है, योग के अनुसार ब्रह्मरन्ध्र से |]
`कबीर' दुनिया देहुरै, सीस नवांवण जाइ |
हिरदा भीतर हरि बसै, तू ताही सौं ल्यौ लाइ ||5||
भावार्थ – कबीर कहते हैं ––यह नादान दुनिया, भला देखो तो, मन्दिरों में माथा टेकने

जाती है | यह नहीं जानती कि हरि का वास तो हृदय में है ,
तब वहीं पर क्यों न लौ लगायी जाय ?

13 : : साध–असाध का अंग

जेता मीठा बोलणा, तेता साध न जाणि |
पहली थाह दिखाइ करि, उंडै देसी आणि ||1||
भावार्थ – उनको वैसा साधु न समझो, जैसा और जितना वे मीठा बोलते हैं |
पहले तो नदी की थाह बता देते हैं कि कितनी और कहाँ है,
पर अन्त में वे गहरे में डुबो देते हैं |
[सो मीठी–मीठी बातों में न आकर अपने स्वयं के विवेक से काम लिया जाये |]
उज्ज्वल देखि न धीजिये, बग ज्यूं माँडै ध्यान |
धौंरे बैठि चपेटसी, यूं ले बूडै ग्यान ||2||
भावार्थ – ऊपर–ऊपर की उज्ज्वलता को देखकर न भूल जाओ, उस पर विश्वास न करो |
उज्ज्वल पंखों वाला बगुला ध्यान लगाये बैठा है,
कोई भी जीव–जन्तु पास गया, तो उसकी चपेट से छूटने का नहीं |
[दम्भी का दिया ज्ञान भी मंझधार में डुबो देगा |]
`कबीर' संगत साध की, कदे न निरफल होइ |
चंदन होसी बांवना, नींब न कहसी कोइ ||3||

भावार्थ – कबीर कहते हैं – साधु की संगति कभी भी व्यर्थ नहीं जाती, उससे सुफल मिलता ही है | चन्दन का वृक्ष बावना अर्थात् छोटा–सा होता है,
पर उसे कोई नीम नहीं कहता, यद्यपि वह कहीं अधिक बडा होता है |
`कबीर' संगति साध की, बेगि करीजै जाइ |
दुर्मति दूरि गंवाइसी, देसी सुमति बताइ ||4||
भावार्थ – साधु की संगति जल्दी ही करो, भाई, नहीं तो समय निकल जायगा |
तुम्हारी दुर्बुद्धि उससे दूर हो जायगी और वह तुम्हें सुबुद्धि का रास्ता पकडा देगी |
मथुरा जाउ भावै द्वारिका, भावै जाउ जगनाथ |
साध–संगति हरि–भगति बिन, कछू न आवै हाथ ||5||
भावार्थ – तुम मथुरा जाओ, चाहे द्वारिका, चाहे जगन्नाथपुरी,
बिना साधु–संगति और हरि–भक्ति के कुछ भी हाथ आने का नहीं |
मेरे संगी दोइ जणा, एक वैष्णौ एक राम |
वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नाम ||6||

भावार्थ – मेरे तो ये दो ही संगी साथी हैं – एक तो वैष्णव, और दूसरा राम |

राम जहाँ मुक्ति का दाता है, वहाँ वैष्णव नाम–स्मरण कराता है ।
तब और किसी साथी से मुझे क्या लेना–देना ?

`कबीर' बन बन में फिरा, कारणि अपणैं राम ।
राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सबरे काम ।।7।।

भावार्थ –कबीर कहते हैं – अपने राम को ढूँढते–ढूँढते एक बन में से मैं दूसरे बन में गया, जब वहाँ मुझे स्वयं राम के सरीखे भक्त मिल गये, तो उहोंने मेरे सारे काम बना दिये । मेरा वन वन का भटकना तभी सफल हुआ ।

जानि बूझि सांचहि तजै, करैं झूठ सूं नेहु ।
ताकी संगति रामजी, सुपिनें ही जिनि देहु ।।8।।

भावार्थ –जो मनुष्य जान–बूझकर सत्य को छोड देता है, और असत्य से नाता जोड लेता है हे रामॐ सपने में भी कभी मुझे उसका साथ न देना ।

`कबीर' तास मिलाइ, जास हियाली तू बसै ।
नहिंतर बेगि उठाइ, नित का गंजन को सहै ।।9।।

भावार्थ – कबीर कहते हैं –
मेरे साई, मुझे तू किसी ऐसे से मिला दे, जिसके हृदय में तू बस रहा हो,
नहीं तो दुनिया से मुझे जल्दी ही उठा ले ।रोज–रोज की यह पीडा कौन सहे ?

14 : : संगति का अंग

हरिजन सेती रूसणा, संसारी सूँ हेत ।
ते नर कदे न नीपजैं, ज्यूं कालर का खेत ।।1।।

भावार्थ – हरिजन से तो रूठना और संसारी लोगों के साथ प्रेम करना – ऐसों के अन्तर में भक्ति–भावना कभी उपज नहीं सकती, जैसे खारवाले खेत में कोई भी बीज उगता नहीं ।

मूरख संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ ।
कदली–सीप–भूवंग मुख, एक बूंद तिहँ भाइ ।।2।।

भावार्थ – मूर्ख का साथ कभी नहीं करना चाहिए, उससे कुछ भी फलित होने का नहीं ।
लोहे की नाव पर चढकर कौन पार जा सकता है ?
वर्षा की बूँद केले पर पडी, सीप में पडी और सांप के मुख में पडी –
परिणाम अलग–अलग हुए– कपूर बन गया, मोती बना और विष बना ।

माषी गुड मैं गडि रही, पंख रही लपटाइ ।
ताली पीटै सिरि धुनैं, मीठैं बोई माइ ।।3।।

भावार्थ – मक्खी बेचारी गुड में धंस गई, फंस गई, पंख उसके चेंप से लिपट गये ।

मिठाई के लालच में वह मर गई, हाथ मलती और सिर पीटती हुई ।
ऊँचे कुल क्या जनमियां, जे करनी ऊँच न होइ ।
सोवरन कलस सुरै भर्‌या, साधू निंद्या सोइ ॥4॥
भावार्थ – ऊँचे कुल में जन्म लेने से क्या होता है, यदि करनी ऊँची न हुई ?
साधुजन सोने के उस कलश की निन्दा ही करते हैं, जिसमें कि मदरा भरी हो ।
`कबिरा' खाई कोट की, पानी पिवै न कोइ ।
जाइ मिलै जब गंग से, तब गंगोदक होइ ॥5॥
भावार्थ – कबीर कहते हैं –
किले को घेरे हुए खाई का पानी कोई नहीं पीता, कौन पियेगा वह गंदला पानी ?
पर जब वही पानी गंगा में जाकर मिल जाता है, तब वह गंगोदक बन जाता है,
परम पवित्र ॐ
`कबीर' तन पंषो भया, जहाँ मन तहाँ उडि जाइ ।
जो जैसी संगति करै, सो तैसे फल खाइ ॥6॥
भावार्थ – कबीर कहते हैं –
यह तन मानो पक्षी हो गया है, मन इसे चाहे जहाँ उडा ले जाता है ।
जिसे जैसी भी संगति मिलती है– संग और कुसंग – वह वैसा ही फल भोगता है ।
[मतलब यह कि मन ही अच्छी और बुरी संगति मे ले जाकर वैसे ही फल देता है ।]
काजल केरी कोठडी, तैसा यहु संसार ।
बलिहारी ता दास की, पैसि र निकसणहार ॥7॥
भावार्थ – यह दुनिया तो काजल की कोठरी है, जो भी इसमें पैठा, उसे कुछ–न–कुछ कालिख लग ही जायगी । धन्य है उस प्रभु–भक्त को,
जो इसमें पैठकर बिना कालिख लगे साफ निकल आता है ।

47

15 : : मन का अंग

`कबीर' मारूँ मन कूं, टूक–टूक ह्वै जाइ ।
बिष की क्यारी बोइ करि, लुणत कहा पछिताइ ॥1॥
भावार्थ – इस मन को मैं ऐसा मारूँगा कि वह टूक–टूक हो जाय ।
मन की ही करतूत है यह, जो जीवन की क्यारी में विष के बीज मैंने बो दिये ,
उन फलों को तब लेना ही होगा, चाहे कितना ही पछताया जाय ।
आसा का ईंधण करूँ, मनसा करूँ बिभूति ।
जोगी फेरि फिल करूँ, यौं बिनना वो सूति ॥2॥
भावार्थ – आशा को जला देता हूँ ईंधन की तरह, और उस राख को तन पर रमाकर जोगी बन जाता हूँ । फिर जहाँ–जहाँ फेरी लगाता फिरूँगा,
जो सूत इक्ट्ठा कर लिया है उसे इसी तरह बुनूँगा ।
[मतलब यह कि आशाएँ सारी जलाकर खाक कर दूँगा और निस्पृह होकर जीवन का क्रम इसी ताने–बाने पर चलाऊँगा ।]
पाणी ही तै पातला, धुवां ही तै झीण ।

पवनां बेगि उतावला, सो दोसत कबीर' कीन्ह ||3||
भावार्थ - कबीर कहते हैं कि ऐसे के साथ दोस्ती करली है मैंने जो पानी से भी पतला है
और धुएं से भी ज्यादा झीना है | पर वेग और चंचलता उसकी पवन से भी कहीं
अधिक है | [पूरी तरह काबू में किया हुआ मन ही ऐसा दोस्त है |]
`कबीर' तुरी पलाणियां, चाबक लीया हाथि |
दिवस थकां सांई मिलौं, पीछै पडिहै राति ||4||
भावार्थ - कबीर कहते हैं -ऐसे घोडे पर जीन कस ली है मैंने, और हाथ में ले लिया है
चाबुक, कि सांझ पडने से पहले ही अपने स्वामी से जा मिलूँ |
बाद में तो रात हो जायगी , और मंजिल तक नहीं पहुँच सकूँगा |
मैमन्ता मन मारि रे, घट ही माहैं घेरि |
जबहि चालै पीठि दे, अंकुस दै-दै फेरि ||5||
भावार्थ - मद-मत्त हाथी को, जो कि मन है, घर में ही घेरकर कुचल दो |
अगर यह पीछे को पैर उठाये, तो अंकुश दे-देकर इसे मोड लो |
कागद केरी नाव री, पाणी केरी गंग |
कहै कबीर कैसे तिरूँ, पंच कुसंगी संग ||6||
भावार्थ - कबीर कहते हैं --नाव यह कागज की है, और गंगा में पानी-ही-पानी भरा है |

49

फिर साथ पाँच कुसंगियों का है, कैसे पार जा सकूँगा ?
[पाँच कुसंगियों से तात्पर्य है पाँच चंचल इन्द्रियों से |]
मनह मनोरथ छाँडि दे, तेरा किया न होइ |
पाणी में घीव नीकसै, तो रूखा खाइ न कोइ ||7||
भावार्थ - अरे मन ॐ अपने मनोरथों को तू छोड दे, तेरा किया कुछ होने-जाने का नहीं |
यदि पानी में से ही घी निकलने लगे, तो कौन रूखी रोटी खायगा ?
[मतलब यह कि मन तो पानी की तरह है, और घी से तात्पर्य है आत्म-दर्शन |]

50

16 : :चितावणी का अंग

`कबीर' नौबत आपणी, दिन दस लेहु बजाइ |
ए पुर पाटन, ए गली, बहुरि न देखै आइ ||1 ||
भावार्थ - कबीर कहते हैं-- अपनी इस नौबत को दस दिन और बजालो तुम |
फिर यह नगर, यह पट्टन और ये गलियाँ देखने को नहीं मिलेंगी ?
कहाँ मिलेगा ऐसा सुयोग, ऐसा संयोग, जीवन सफल करने का, बिगडी बात को बना लेने का
जिनके नौबति बाजती, मैंगल बंधते बारि |
एकै हरि के नाव बिन, गए जनम सब हारि ||2||
भावार्थ - पहर-पहर पर नौबत बजा करती थी जिनके द्वार पर,
और मस्त हाथी जहाँ बँधे हुए झूमते थे | वे अपने जीवन की बाजी हार गये |
इसलिए कि उन्होंने हरि का नाम-स्मरण नहीं किया|

इक दिन ऐसा होइगा, सब सूं पडै बिछोह |
राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होइ ||3||
भावार्थ - एक दिन ऐसा आयगा ही, जब सबसे बिछुड जाना होगा |

51

तब ये बडे-बडे राजा और छत्र-धारी राणा क्यों सचेत नहीं हो जाते ?
कभी-न-कभी अचानक आ जाने वाले उस दिन को वे क्यों याद नहीं कर रहे ?
`कबीर' कहा गरबियौ, काल गहै कर केस |
ना जाणै कहाँ मारिसी, कै घरि कै परदेस ||4||
भावार्थ - कबीर कहते हैं -यह गर्व कैसा, जबकि काल ने तुम्हारी चोटी को पकड रखा है?
कौन जाने वह तुम्हें कहाँ और कब मार देगा ॐ पता नहीं कि तुम्हारे घर में ही,
या कहीं परदेश में |
बिन रखवाले बाहिरा, चिडिया खाया खेत |
आधा-परधा ऊबरे, चेति सकै तो चेति ||5||
भावार्थ - खेत एकदम खुला पडा है, रखवाला कोई भी नहीं | चिडियों ने बहुत कुछ उसे चुग लिया है | चेत सके तो अब भी चेत जा, जाग जा ,
जिससे कि आधा-परधा जो भी रह गया हो, वह बच जाय |
कहा कियौ हम आइ करि, कहा कहैंगे जाइ |
इत के भये न उत के, चाले मूल गंवाइ ||6||
भावार्थ - हमने यहाँ आकर क्या किया ? और साई के दरबार में जाकर क्या कहेंगे ?

52

न तो यहाँ के हुए और न वहाँ के ही - दोनों ही ठौर बिगाड बैठे |
मूल भी गवाँकर इस बाजार से अब हम बिदा ले रहे हैं |
`कबीर' केवल राम की, तू जिनि छाँडे ओट |
घण-अहरनि बिचि लौह ज्यूं, घणी सहै सिर चोट ||7||
भावार्थ - कबीर कहते हैं, चेतावनी देते हुए --
राम की ओट को तू मत छोड, केवल यही तो एक ओट है |
इसे छोड दिया तो तेरी वही गति होगी, जो लोहे की होती है ,
हथौडे और निहाई के बीच आकर तेरे सिर पर चोट-पर-चोट पडेगी |
उन चोटों से यह ओट ही तुझे बचा सकती है |
उजला कपडा पहरि करि, पान सुपारी खाहि |
एकै हरि के नाव बिन, बाँधे जमपुरि जाहि ||8||
भावार्थ - बढिया उजले कपडे उन्होंने पहन रखे हैं, और पान-सुपारी खाकर मुँह लाल कर लिया है अपना | पर यह साज-सिंगार अन्त में बचा नहीं सकेगा, जबकि यमदूत बाँधकर ले जायंगे |
उस दिन केवल हरि का नाम ही यम-बंधन से छुडा सकेगा |
नान्हा कातौ चित्त दे, महँगे मोल बिकाइ |
गाहक राजा राम है, और न नेडा आइ ||9||

53

भावार्थ – खूब चित्त लगाकर महीन–से–महीन सूत तू चरखे पर कात,
वह बडे महँगे मोल बिकेगा | लेकिन उसका गाहक तो केवल राम है ,
कोई दूसरा उसका खरीदार पास फटकने का नहीं |

मैं–मैं बडी बलाइ है, सकै तो निकसो भाजि |
कब लग राखौ हे सखी, रूई लपेटी आगि ||10||

भावार्थ – यह मैं –मैं बहुत बडी बला है | इससे निकलकर भाग सको तो भाग जाओ |
अरी सखी, रुई में आग को लपेटकर तू कबतक रख सकेगी ?
[राग की आग को चतुराई से ढककर भी छिपाया और बुझाया नहीं जा सकता |]

54

17 : : भेष का अंग

माला पहिरे मनमुषी, ताथैं कछू न होई |
मन माला कौ फेरता, जग उजियारा सोइ ||1||

भावार्थ –– लोगों ने यह`मनमुखी' माला धारण कर रखी है, नहीं समझते कि इससे कोई लाभ होने का नहीं | माला मन ही की क्यों नहीं फेरते ये लोग ?
`इधर' से हटाकर मन को`उधर' मोड दें, जिससे सारा जगत जगमगा उठे |
[आत्मा का प्रकाश फैल जाय और भर जाय सर्वत्र |]

`कबीर' माला मन की, और संसारी भेष |
माला पहर्‌यां हरि मिलै, तौ अरहट कै गलि देखि ||2||

भावार्थ – कबीर कहते हैं – सच्ची माला तो अचंचल मन की ही है,
बाकी तो संसारी भेष है मालाधारियों का |
यदि माला पहनने से ही हरि से मिलन होता हो, तो रहट को देखो,
हरि से क्या उसकी भेंट हो गई, इतनी बडी माला गले में डाल लेने से ?

माला पहर्‌यां कुछ नहीं, भगति न आई हाथ |
माथौ मूँछ मुँडाइ करि, चल्या जगत के साथ ||3||

भावार्थ – यदि भक्ति तेरे हाथ न लगी, तो माला पहनने से क्या होना–जाना ?

केवल सिर मुँडा लिया और मूँछें मुँडा लीं – बाकी व्यवहार तो दुनियादारों के जैसा ही है तेरा |

साई सेती सांच चलि, औरां सूं सुध भाइ |
भावै लम्बे केस करि, भावै घुरडि मुंडाइ ||4||

भावार्थ –स्वामी के प्रति तुम सदा सच्चे रहो, और दूसरों के साथ सहज–सीधे भाव से बरतो फिर चाहे तुम लम्बे बाल रखो या सिर को पूरा मुँडा लो |

[वह मालिक भेष को नहीं देखता, वह तो सच्चों का गाहक है |]

केसों कहा बिगाडिया, जो मुँडै सौ बार |
मन को काहे न मूंडिये, जामैं बिषय–बिकार ||5||
भावार्थ –बेचारे इन बालों ने क्या बिगाडा तुम्हारा, जो सैकडों बार मूँडते रहते हो
अपने मन को मूँडो न, उसे साफ करलो न , जिसमें विषयों के विकार–ही–विकार
भरे पडे हैं |

56

स्वांग पहरि सोरहा भया, खाया पीया खूंदि |
जिहि सेरी साधू नीकले, सो तौ मेल्ही मूंदि ||6||
भावार्थ – वाहॐ खूब बनाया यह साधु का स्वांग ॐ अन्दर तुम्हारे लोभ भरा हुआ है और
खाते पीते हो ठूंस–ठूंस कर ,
जिस गली में से साधु गुजरता है, उसे तुमने बन्द कर रखा है |

बैसनों भया तौ क्या भया, बूझा नहीं बबेक |
छापा तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक ||7||
भावार्थ –इस तरह वैष्णव बन जाने से क्या होता है, जब कि विवेक को तुमने समझा नहीं ॐ
छापे और तिलक लगाकर तुम स्वयं विषय की आग में जलते रहे, और दूसरों को भी जलाया|
तन कों जोगी सब करै, मन कों बिरला कोइ |
सब सिधि सहजै पाइये, जे मन जोगी होइ ||8||
भावार्थ – तन के योगी तो सभी बन जाते हैं, ऊपरी भेषधारी योगी |
मगर मन को योग के रंग में रँगनेवाला बिरला ही कोई होता है |
यह मन अगर योगी बन जाय, तो सहज ही सारी सिद्धियाँ सुलभ हो जायंगी |

पष ले बूडी पृथमीं, झूठे कुल की लार |
अलष बिसार्‌यो भेष मैं, बूडे काली धार ||9||

57

भावार्थ – किसी–न–किसी पक्ष को लेकर, वाद में पडकर और कुल की परम्पराओं को
अपनाकर यह दुनिया डूब गई है | भेष ने 'अलख' को भुला दिया | तब काली
धार में तो डूबना ही था |
चतुराई हरि ना मिलै, ए बातां की बात |
एक निसप्रेही निरधार का, गाहक गोपीनाथ ||10||
भावार्थ – कितनी ही चतुराई करो, उसके सहारे हरि मिलने का नहीं, चतुराई तो सारी –
बातों–ही–बातों की है |
गोपीनाथ तो एक उसीका गाहक है, उसीको अपनाता है |जो निस्पृह और निराधार होता है|
[दुनिया की इच्छाओं में फँसे हुए और जहाँ–तहाँ अपना आश्रय खोजनेवाले को दूसरा
कौन खरीद सकता है, कौन उसे अंगीकार कर सकता है ?]

58

18 : : साध का अंग

निरबैरी निहकामता, साई सेती नेह |
विषिया सूं न्यारा रहै, संतनि का अंग एह ||1||
भावार्थ — कोई पूछ बैठे तो सन्तों के लक्षण ये हैं— किसी से भी बैर नहीं, कोई कामना नहीं, एक प्रभु से ही पूरा प्रेम |और विषय—वासनाओं में निर्लेपता |

संत न छांडै संतई, जे कोटिक मिलें असंत |
चंदन भुवंगा बैठिया, तउ सीतलता न तजंत ||2||
भावार्थ — करोडों ही असन्त आजायं, तोभी सन्त अपना सन्तपना नहीं छोडता |
चन्दन के वृक्ष पर कितने ही साँप आ बैठें, तोभी वह शीतलता को नहीं छोडता |

गांठी दाम न बांधई, नहि नारी सों नेह |
कह'कबीर' ता साध की, हम चरनन की खेह ||3||
भावार्थ — कबीर कहते हैं कि हम ऐसे साधु के पैरों की धूल बन जाना चाहते हैं,
जो गाँठ में एक कौडी भी नहीं रखता और नारी से जिसका प्रेम नहीं |

सिहों के लेहँड नहीं, हंसों की नहीं पाँत |
लालों की नहि बोरियाँ, साध न चलैं जमात ||4||
भावार्थ — सिहों के झुण्ड नहीं हुआ करते और न हंसों की कतारें | लाल—रत्न बोरियों में नहीं भरे जाते, और जमात को साथ लेकर साधु नहि चला करते |

जाति न पूछौ साध की, पूछ लीजिए ग्यान |
मोल करौ तलवार का, पडा रहन दो म्यान ||5||
भावार्थ —क्या पूछते हो कि साधु किस जाति का है?पूछना हो तो उससे ज्ञान की बात पूछो
तलवार खरीदनी है, तो उसकी धार पर चढे पानी को देखो, उसके म्यान को फेंक दो,
भले ही वह बहुमूल्य हो |

`कबीर' हरि का भावता, झीणां पंजर तास |
रैणि न आवै नींदडी, अंगि न चढई मांस ||6||
भावार्थ — कबीर कहते हैं —हरि के प्यारे का शरीर तो देखो—पंजर ही रह गया है बाकी |
सारी ही रात उसे नींद नहीं आती, और अंग पर मांस नहीं चढ रहा |

60

राम बियोगी तन बिकल, ताहि न चीन्हे कोइ |
तंबोली के पान ज्यूं , दिन—दिन पीला होइ ||7||
भावार्थ — पूछते हो कि राम का वियोग होता कैसा है ?
विरह में वह व्यथित रहता है, देखकर कोई पहचान नहीं पाता कि वह कौन है ?
तम्बोली के पान की तरह, बिना सींचे, दिन—दिन वह पीला पडता जाता है |

काम मिलावे राम कूं, जे कोई जाणै राखि |
`कबीर' बिचारा क्या कहै, जाकी सुखदेव बोलै साखि ||8||
भावार्थ — हाँ,राम से काम भी मिला सकता है —ऐसा काम, जिसे कि नियंत्रण में रखा जाय|
यह बात बेचारा कबीर ही नहीं कह रहा है, शुकदेव मुनि भी साक्षी भर रहे हैं |

[आशय धर्म से अविरुद्ध' काम से है, अर्थात् भोग के प्रति अनासक्ति और उसपर नियंत्रण |]

जिहि हिरदे हरि आइया, सो क्यूं छानां होइ |
जतन-जतन करि दाबिये, तऊ उजाला सोइ ||9||

भावार्थ - जिसके अन्तर में हरि आ बसा, उसके प्रेम को कैसे छिपाया जा सकता है ?
दीपक को जतन कर-कर कितना ही छिपाओ, तब भी उसका उजेला तो प्रकट हो ही जायगा |

61

[रामकृष्ण परमहंस के शब्दों में चिमनी के अन्दर से फानुस का प्रकाश छिपा नहीं रह सकता |]

फाटै दीदै में फिरौं, नजरि न आवै कोइ |
जिहि घटि मेरा साँईयाँ, सो क्यूं छाना होइ ||10||

भावार्थ - कबसे मैं आँखें फाड-फाडकर देख रहा हूँ कि ऐसा कोई मिल जाय,
जिसे मेरे साई का दीदार हुआ हो |
वह किसी भी तरह छिपा नहीं रह जायगा, नजर पर चढे तो ॐ

पावकरूपी राम है, घटि-घटि रह्या समाइ |
चित चकमक लागै नहीं, ताथै धूवाँ ह्वै-ह्वै जाइ ||11||

भावार्थ - मेरा राम तो आग के सदृश है, जो घट-घट में समा रहा है |
वह प्रकट तभी होगा, जब कि चित्त उसपर केन्द्रित हो जायगा |
चकमक पत्थर की रगड बैठ नहीं रही, इससे केवल धुँवा उठ रहा है |
तो आग अब कैसे प्रकटे ?

`कबीर' खालिक जागिया, और न जागै कोइ |
कै जगै बिषई विष-भर्या, कै दास बंदगी होइ ||12||

भावार्थ - कबीर कहते हैं -जाग रहा है, तो मेरा वह खालिक ही,
दुनिया तो गहरी नींद में सो रही है, कोई भी नहीं जाग रहा |

62

हाँ, ये दो ही जागते हैं -
या तो विषय के जहर में डूबा हुआ कोई, या फिर साई का बन्दा, जिसकी सारी रात बंदगी करते- करते बीत जाती है |

पुरपाटण सुवस बसा, आनन्द ठांयैं ठांइ |
राम-सनेही बाहिरा, उलजंड मेरे भाइ ||13||

भावार्थ - मेरी समझ में वे पुर और वे नगर वीरान ही हैं, जिनमें राम के स्नेही नहीं बस रहे, यद्यपि उनको बडे सुन्दर ढंग से बनाया और बसाया गया है और जगह-जगह जहाँ आनन्द-उत्सव हो रहे हैं |

जिहि घरि साध न पूजि, हरि की सेवा नाहि |
ते घर मडहट सारंषे, भूत बसै तिन माहि ||14||

भावार्थ - जिस घर में साधु की पूजा नहीं, और हरि की सेवा नहीं होती,

वह घर तो मरघट है, उसमें भूत–ही–भूत रहते हैं ।
हैवर गैवर सघन धन, छत्रपति की नारि ।
तास पटंतर ना तूलै, हरिजन की पनिहारि ।।15।।
भावार्थ – हरि–भक्त की पनिहारिन की बराबरी छत्रधारी की रानी भी नहीं कर सकती ।
ऐसे राजा की रानी, जो अच्छे–से–अच्छे घोडों और हाथियों का स्वामी है,

63
और जिसका खजाना अपार धन–सम्पदा से भरा पडा है ।
क्यूं नृप–नारी नींदिये, क्यूं पनिहारी कौं मान ।
वा मांग संवारे पीव कौं, या नित उठि सुमिरै राम ।।26।।
भावार्थ – रानी को यह नीचा स्थान क्यों दिया गया, और पनिहारिन को इतना ऊँचा स्थान ?
इसलिए कि रानी तो अपने राजा को रिझाने के लिए मांग सँवारती है, सिगार करती है
और वह पनिहारिन नित्य उठकर अपने राम का सुमिरन ।
`कबीर कुल तौ सो भला, जिहि कुल उपजै दास ।
जिहि कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक–पलास ।।27।।
भावार्थ – कबीर कहते हैं–– कुल तो वही श्रेष्ठ है, जिसमें हरि–भक्त जन्म लेता है ।
जिस कुल में हरि–भक्त नहीं जनमता, वह कुल आक और पलास के समान व्यर्थ है ।

64

19 : : मधि का अंग

`कबीर'दुबिधा दूरि करि, एक अंग ह्वै लागि ।

यहु सीतल बहु तपति है, दोऊ कहिये आगि ।।1।।
भावार्थ – कबीर कहते हैं –– इस दुविधा को तू दूर कर दे – कभी इधर की बात करता है,
कभी उधर की । एक ही का हो जा । यह अत्यन्त शीतल है और वह अत्यंत
तप्त – आग दोनों ही हैं ।
[दोनों ही`अति' को छोडकर मध्य का मार्ग तू पकड ले ।]
दुखिया मूवा दुख कौं, सुखिया सुख कौं झुरि ।
सदा अनंदी राम के, जिनि सुख दुख मेल्हे दूरि ।।2।।
भावार्थ – दुखिया भी मर रहा है, और सुखिया भी
एक तो अति अधिक दुःख के कारण, और दूसरा अति अधिक सुख से ।
किन्तु राम के जन सदा ही आनंद में रहते हैं ,
क्योंकि उन्होंने सुख और दुःख दोनों को दूर कर दिया है ।
काबा फिर कासी भया, राम भया रे रहीम ।
मोट चून मैदा भया , बैठि कबीरा जीम ।।3।।

65
भावार्थ – काबा तो बन गया है काशी, और मेरा राम ही है रहीम ।

पहले जो आटा मोटा था, वह अब मैदा बन गया |कबीर मौज में बैठा जीम रहा है, स्वाद ले–लेकर |

[साम्प्रदायिकता ने खींचातानी कर–कर मजा किरकिरा कर दिया था | `मध्य का मार्ग पकड लेने से दुविधा सारी दूर हो गयी और जीवन में स्वाद आ गया |]

66

20 : : बेसास का अंग

रचनहार कूं चीन्हि लै, खैबे कूं कहा रोइ |
दिल मंदिर मैं पैसि करि, ताणि पछेवडा सोइ ||1||

भावार्थ – क्या रोता फिरता है खाने के लिए ? अपने सरजनहार को पहचान ले न ॐ दिल के मंदिर में पैठकर उसके ध्यान में चादर तानकर तू बेफिक्र सो जा |

भूखा भूखा क्या करैं, कहा सुनावै लोग |
भांडा घडि जिनि मुख दिया, सोई पूरण जोग ||2||

भावार्थ –अरे, द्वार–द्वार पर क्या चिल्लाता फिरता है किमैं भूखा हूँ, मैं भूखा हूँ? भांडा गढकर जिसने उसका मुँह बनाया, वही उसे भरेगा, रीता नहीं रखेगा |

`कबीर' का तू चितवै, का तेरा च्यंत्या होइ |
अणच्यंत्या हरिजी करैं, जो तोहि च्यंत न होइ ||3||

भावार्थ – कबीर कहते हैं – क्यों व्यर्थ चिंता कर रहा है? चिंता करने से क्या होगा? जिस बात को तूने कभी सोचा नहीं, जिसकी चिंता नहीं की, उस अ–चिंतित को भी तेरा साई पूरा कर देगा |

67

संत न बांधै गाठडी, पेट समाता–लेइ |
साई सूँ सनमुख रहै, जहाँ माँगै तहां देइ ||4||

भावार्थ – संचय करके संत कभी गठरी नहीं बाँधता | उतना ही लेता है, जितने की दरकार पेट को हो |

साई ॐ तू तो सामने खडा है, जो भी जहाँ माँगूँगा, वह तू वहीं दे देगा |

मानि महातम प्रेम–रस, गरवातण गुण नेह |
ए सबहीं अहला गया, जबहीं कह्या कुछ देह ||5||

भावार्थ – जब भी किसी ने किसी से कहा कि॒कुछ दे दो, '
समझलो कि तब न तो उसका सम्मान रहा, न बडाई, न प्रेम–रस ,
और न गौरव, और न कोई गुण और न स्नेह ही |

मांगण मरण समान है, बिरला बंचै कोई |
कहै॒कबीर' रघुनाथ सूं, मति रे मंगावै मोहि ||6||

भावार्थ– कबीर रघुनाथजी से प्रार्थना करता है कि, मुझे किसीसे कभी कुछ माँगना न पडे क्योंकि माँगना मरण के समान है, बिरला ही कोई इससे बचा है |

`कबीर सब जग हंडिया, मांदल कंधि चढाइ |

हरि बिन अपना कोउ नहीं, देखे ठोकि बजाइ ||7||

भावार्थ - कबीर कहते हैं -

सारे संसार में एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर का चक्कर मैं काटता फिरा ,
बहुत भटका कंधे पर कांवड रखकर पूजा की सामग्री के साथ | सारे देवी देवताओं को देख लिया, ठोकबजाकर परख लिया, पर हरि को छोडकर ऐसा कोई नहीं मिला,
जिसे मैं अपना कह सकूं |

21 : : सूरातन का अंग

गगन दमामा बाजिया, पड्या निसानैं घाव |
खेत बुहार्‌या सूरिमै, मुझ मरणे का चाव ||1||

भावार्थ - गगन में युद्ध के नगाडे बज उठे, और निशान पर चोट पडने लगी |

शूरवीर ने रणक्षेत्र को झाड-बुहारकर तैयार कर दिया ,
तब कहता है कि अब मुझे कट-मरने का उत्साह चढ रहा है | '

`कबीर' सोई सूरिमा, मन सूं मांडै झूझ |
पंच पयादा पाडि ले, दूरि करै सब दूज ||2||

भावार्थ - कबीर कहते हैं -

सच्चा सूरमा वह है, जो अपने वैरी मन से युद्ध ठान लेता है,
पाँचों पयादों को जो मार भगाता है, और द्वैत को दूर कर देता है |
[पाँच पयादे, अर्थात काम, क्रोध, लोभ, मोह और मत्सर|

द्वैत अर्थात् जीव और ब्रह्म के बीच भेद-भावना |]

`कबीर' संसा कोउ नहीं, हरि सूं लाग्गा हेत |
काम क्रोध सूं झूझणा, चौडै मांड्या खेत ||3||

भावार्थ - कबीर कहते हैं --

मेरे मन में कुछ भी संशय नहीं रहा, और हरि से लगन जुड गई |
इसीलिए चौडे में आकर काम और क्रोध से जूझ रहा हूँ रण-क्षेत्र में |

सूरा तबही परषिये, लडै धणी के हेत |
पुरिजा-पुरिजा ह्वै पडै, तऊ न छांडै खेत ||4||

भावार्थ - शूरवीर की तभी सच्ची परख होती है, जब वह अपने स्वामी के लिए जूझता है |
पुर्जा-पुर्जा कट जाने पर भी वह युद्ध के क्षेत्र को नहीं छोडता |

अब तौ झूझ्या हीं बणै, मुडि चाल्यां घर दूर |
सिर साहिब कौ सौपतां, सोच न कीजै सूर ||5||

भावार्थ — अब तो झूझते बनेगा, पीछे पैर क्या रखना ? अगर यहाँ से मुडोगे तो घर तो
बहुत दूर रह गया है | साई को सिर सौंपते हुए सूरमा कभी सोचता नहीं, कभी
हिचकता नहीं |
जिस मरनैं थैं जग डरै, सो मेरे आनन्द |
कब मरिहूं, कब देखिहूं पूरन परमानंद ||6||
भावार्थ — जिस मरण से दुनिया डरती है, उससे मुझे तो आनन्द होता है ,

71

कब मरूँगा और कब देखूँगा मैं अपने पूर्ण सच्चिदानन्द को ॐ
कायर बहुत पमांवहीं, बहकि न बोलै सूर |
काम पड्यां हीं जाणिये, किस मुख परि है नूर ||7||
भावार्थ — बडी—बडी डींगे कायर ही हाँका करते हैं, शूरवीर कभी बहकते नहीं |
यह तो काम आने पर ही जाना जा सकता है कि शूरवीरता का नूर किस चेहरे
पर प्रकट होता है |
`कबीर' यह घर पेम का, खाला का घर नाहि |
सीस उतारे हाथि धरि, सो पैसे घर माहि ||8||
भावार्थ — कबीर कहते हैं — यह प्रेम का घर है, किसी खाला का नहीं ,
वही इसके अन्दर पैर रख सकता है, जो अपना सिर उतारकर हाथ पर रखले |
[सीस अर्थात अहंकार | पाठान्तर है,`भुइं धरै' | यह पाठ कुछ अधिक सार्थक
जचता है | सिर को उतारकर जमीन पर रख देना, यह हाथ पर रख देने से कहीं अधिक
शूर—वीरता और निरहंकारिता को व्यक्त करता है |]
`कबीर' निज घर प्रेम का, मारग अगम अगाध |
सीस उतारि पग तलि धरै, तब निकट प्रेम का स्वाद ||9||

72

भावार्थ — कबीर कहते हैं —अपना खुद का घर तो इस जीवात्मा का प्रेम ही है |
मगर वहाँ तक पहुँचने का रास्ता बडा विकट है, और लम्बा इतना कि
उसका कहीं छोर ही नहीं मिल रहा | प्रेम रस का स्वाद तभी सुगम हो सकता है,
जब कि अपने सिर को उतारकर उसे पैरों के नीचे रख दिया जाय |
प्रेम न खेतौं नीपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ |
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ ||10||
भावार्थ — अरे भाई ॐ प्रेम खेतों में नहीं उपजता, और न हाट—बाजार में बिका करता है

यह महँगा है और सस्ता भी — यों कि राजा हो या प्रजा, कोई भी उसे सिर
देकर खरीद ले जा सकता है |
`कबीर' घोडा प्रेम का, चेतनि चढि असवार |
ग्यान खडग गहि काल सिरि, भली मचाई मार ||11||
भावार्थ — कबीर कहते हैं —
क्या ही मार—धाड मचा दी है इस चेतन शूरवीर ने |सवार हो गया है प्रेम के

घोडे पर | तलवार ज्ञान की ले ली है, और काल–जैसे शत्रु के सिर पर वह चोट–
पर–चोट कर रहा है |

73

जेते तारे रैणि के, तैते बैरी मुझ |
धड सूली सिर कंगुरें, तऊ न बिसारौं तुझ ||12||
भावार्थ – मेरे अगर उतने भी शत्रु हो जायं, जितने कि रात में तारे दीखते हैं,
तब भी मेरा धड सूली पर होगा और सिर रखा होगा गढ के कंगूरे पर,
फिर भी मैं तुझे भूलने का नहीं |
सिरसाटें हरि सेविये, छांडि जीव की बाणि |
जे सिर दीया हरि मिलै, तब लगि हाणि न जाणि ||13||
भावार्थ – सिर सौंपकर ही हरि की सेवा करनी चाहिए |
जीव के स्वभाव को बीच में नहीं आना चाहिए |
सिर देने पर यदि हरि से मिलन होता है, तो यह न समझा जाय कि वह
कोई घाटे का सौदा है |
`कबीर' हरि सबकूं भजै, हरि कूं भजै न कोइ |
जबलग आस सरीर की, तबलग दास न होइ ||14 ||
भावार्थ – कबीर कहते हैं –हरि तो सबका ध्यान रखता है, सबका स्मरण करता है ,
पर उसका ध्यान–स्मरण कोई नहीं करता |
प्रभु का भक्त तबतक कोई हो नहीं सकता, जबतक देह के प्रति आशा और आसक्ति है |

74

22 : : जीवन–मृतक का अंग

`कबीर मन मृतक भया, दुर्बल भया सरीर |
तब पैंडे लागा हरि फिरै, कहत कबीर ,कबीर ||1||
भावार्थ – कबीर कहते हैं –मेरा मन जब मर गया और शरीर सूखकर कांटा हो गया, तब,
हरि मेरे पीछे लगे फिरने मेरा नाम पुकार–पुकारकर–
`अय कबीर ॐ अय कबीर ॐ'– उलटे वह मेरा जप करने लगे |
जीवन थैं मरिबो भलौ, जो मरि जानैं कोइ |
मरनैं पहली जे मरै, तो कलि अजरावर होइ ||2||
भावार्थ – इस जीने से तो मरना कहीं अच्छा ल मगर मरने–मरने में अन्तर है |
अगर कोई मरना जानता हो, जीते–जीते ही मर जाय |
मरने से पहले ही जो मर गया, वह दूसरे ही क्षण अजर और अमर हो गया |
[जिसने अपनी वासनाओं को मार दिया, वह शरीर रहते हुए भी मृतक अर्थात मुक्त है|]
आपा मेट्या हरि मिलै, हरि मेट्या सब जाइ |
अकथ कहाणी प्रेम की, कह्यां न कोउ पत्याइ ||3||

75

भावार्थ – अहंकार को मिटा देने से ही हरि से भेंट होती है, और हरि को मिटा दिया, भुला दिया, तो हानि–ही–हानि है |प्रेम की कहानी अकथनीय है | यदि इसे कहा जाय तो कौन विश्वास करेगा ?

`कबीर' चेरा संत का, दासनि का परदास |
कबीर ऐसैं होइ रह्या, ज्यूं पाऊँ तलि घास ||4||

भावार्थ – कबीर सन्तों का दास है, उनके दासों का भी दास है | वह ऐसे रह रहा है, जैसे पैरों के नीचे घास रहती है |

रोडा ह्वै रहो बाट का, तजि पाषंड अभिमान |
ऐसा जे जन ह्वै रहै, ताहि मिलै भगवान ||5||

भावार्थ – पाखण्ड और अभिमान को छोडकर तू रास्ते पर का कंकड बन जा | ऐसी रहनी से जो बन्दा रहता है, उसे ही मेरा मालिक मिलता है |

23 : : सम्रथाई का अंग

जिसहि न कोई तिसहि तू, जिस तू तिस ब कोइ |
दरिगह तेरी सांईयां , ना मरूम कोइ होइ ||1||

भावार्थ – जिसका कहीं भी कोई सहारा नहीं, उसका एक तू ही सहारा है | जिसका तू हो गया, उससे सभी नाता जोड लेते हैं
साई ॐ तेरी दरगाह से, जो भी वहाँ पहुँचा, वह महरूम नहीं हुआ , सभी को आश्रय मिला |

सात समंद की मसि करौ, लेखनि सब बनराइ |
धरती सब कागद करौ, तऊ हरि गुण लिख्या न जाइ ||2||

भावार्थ – समंदरों की स्याही बना लूं और सारे ही वृक्षों की लेखनी, और कागज का काम लूँ सारी धरती से, तब भी हरि के अनन्त गुणों को लिखा नहीं जा सकेगा |

अबरन कौ का बरनिये, मोपै लख्या न जाइ |
अपना बाना वाहिया, कहि कहि थाके माइ ||3||

भावार्थ – उसका क्या वर्णन किया जाय, जो कि वर्णन से बाहर है ? मैं उसे कैसे देखूँ वह आँख ही नहीं देखने की | सबने अपना–अपना ही बाना पहनाया उसे, और कह–कहकर थक गया उनका अन्तर |

झल बावैं झल दाहिनैं, झलहि माहि व्यौहार |
आगैं पीछैं झलमई, राखैं सिरजन हार ||4||

भावार्थ – झालह्यज्वालाह् बाई ओर जल रही है, और दाहिनी ओर भी, लपटों ने घेर लिया है दुनियाँ के सारे ही व्यवहार को | जहाँ तक नजर जाती है, जलती और उठती हुई लपटें ही दिखाई देती हैं | इस ज्वाला में से एक मेरा सिरजनहार ही निकालकर बचा सकता है |

सांई मेरा बाणियां, सहजि करै ब्यौपार |
बिन डांडी बिन पालडैं, तोले सब संसार ||5||
भावार्थ — ऐसा बनिया है मेरा स्वामी, जिसका व्यापार सहज ही चल रहा है |
उसकी तराजू में न तो डांडी है और न पलडे फिर भी वह सारे संसार
को तौल रहा है, सबको न्याय दे रहा है |
साई सूं सब होत है, बंदे थैं कुछ नाहि |
राई थैं परबत करै, परबत राई माहि ||6||
भावार्थ — स्वामी ही मेरा समर्थ है, वह सब कुछ कर सकता है ल

उसके इस बन्दे से कुछ भी नहीं होने का |
वह राई से पर्वत कर देता है और उसके इशारे से पर्वत भी राई में समा जाता है |

24 : : उपदेश का अंग

बैरागी बिरकत भला, गिरही चित्त उदार |
दुहुं चूका रीता पडैं , वाकूं वार न पार ||1||
भावार्थ — बैरागी वही अच्छा, जिसमें सच्ची विरक्ति हो,
और गृहस्थ वह अच्छा, जिसका हृदय उदार हो |
यदि वैरागी के मन में विरक्ति नहीं, और गृहस्थ के मन में उदारता नहीं,
तो दोनों का ऐसा पतन होगा कि जिसकी हद नहीं |
`कबीर' हरि के नाव सूं, प्रीति रहै इकतार |
तो मुख तैं मोती झडैं, हीरे अन्त न फार ||2||
भावार्थ — कबीर कहते हैं --
यदि हरिनाम पर अविरल प्रीति बनी रहे, तो उसके मुख से मोती—ही मोती झडेंगे,
और इतने हीरे कि जिनकी गिनती नहीं |
[हरि भक्त का व्यवहार — बर्ताव सबके प्रति मधुर ही होता है— मन मधुर, वचन
मधुर और कर्म मधुर |]
ऐसी बाणी बोलिये, मन का आपा खोइ |
अपना तन सीतल करै, औरन को सुख होइ ||3||

भावार्थ — अपना अहंकार छोडकर ऐसी बाणी बोलनी चाहिए कि, जिससे बोलनेवाला स्वयं
शीतलता और शान्ति का अनुभव करे, और सुननेवालों को भी सुख मिले |
कोइ एक राखै सावधां, चेतनि पहरै जागि |
बस्तर बासन सूं खिसै, चोर न सकई लागि ||4||

भावार्थ – पहर–पहर पर जागता हुआ जो सचेत रहता है, उसके वस्त्र और बर्तन कैसे कोई ले जा सकता है ?चोर तो दूर ही रहेंगे, उसके पीछे नहीं लगेंगे ।

जग में बैरी कोइ नहीं, जो मन सीतल होइ ।
या आपा को डारिदे, दया करै सब कोइ ।।5।।

भावार्थ – हमारे मन में यदि शीतलता है, क्रोध नहीं है और क्षमा है, तो संसार में हमसे किसीका बैर हो नहीं सकता ।

अथवा अहंकार को निकाल बाहर करदें, तो हम पर सब कृपा ही करेंगे ।

आवत गारी एक है, उलटत होइ अनेक ।
कह'कबीर' नंहि उलटिए, वही एक की एक ।।6।।

भावार्थ – हमें कोई एक गाली दे और हम उलटकर उसे गालियाँ दें, तो वे गालियाँ अनेक हो जायेंगी। कबीर कहते हैं कि यदि गाली को पलटा न जाय, गाली का जवाब गाली से न दिया जाय, तो वह गाली एक ही रहेगी ।

बोलत ही पहिचानिए , साहु चोर को घाट ।
अन्तर की करनी सबै, निकसै मुख की बाट ।।7।।

भावार्थ – कौन तो साह है, और कौन चोर – यह उसके बोलने से ही पहचाना जा सकता है । अन्तर में अच्छा या बुरा जो भी भरा हुआ है, वह मुँह के रास्ते बाहर निकल आता है ।

25 : : विविध

पाइ पदारथ पेलि करि, कंकर लीया हाथि ।
जोडी बिछटी हंस की, पड्या बगां के साथि ।।1।।

भावार्थ –अनमोल पदार्थ जो मिल गया था, उसे तो छोड दिया और कंकड हाथ में ले लिया । हंसों के साथ से बिछुड गया और बगुलों के साथ हो लिया ।

[तात्पर्य यह कि आखिरी मंजिल तक पहुँचते–पहुँचते साधक यात्रियों का साथ छूट जाने और सिद्धियों के फेर में पड जाने से यह जीव फिर दुनियांदारी की तरफ लौट आया ।]

हरि हीरा, जन जौहरी, ले ले मॉंडी हाटि ।
जब र मिलैगा पारिषी, तब हरि हीरां की साटि ।।2।।

भावार्थ – हरि ही हीरा है, और जौहरी है हरि का भक्त

हीरे को हाट–बाजार में बेच देने के लिए उसने दूकान लगा रखी है,

वही और तभी इसे कोई खरीद सकेगा, जबकि सच्चे पारखी अर्थात् सद्‌गुरु से भेंट हो जायगी

बारी बारी आपणीं, चले पियारे म्यंत ।
तेरी बारी रे जिया , नेडी आवै नित ।।3।।

83

भावार्थ – अपने प्यारे संगी–साथी और मित्र बारी–बारी से विदा हो रहे हैं,
अब, मेरे जीव, तेरी भी बारी रोज–रोज नजदीक आती जा रही है ।

जो ऊग्या सो आंथवै, फूल्या सो कुमिलाइ ।
जो चिणियां सो ढहि पडै, जो आया सो जाइ ।।4।।

भावार्थ – जिसका उदय हुआ, उसका अस्त होगा हील्ल जो फूल खिल उठा, वह कुम्हलायगा ही ल्ल
जो मकान चिना गया, वह कभी–न–कभी तो गिरेगा हील्ल
और जो भी दुनियाँ में आया, उसे एक न एक दिन कूच करना ही है ।

गोव्यंद के गुण बहुत हैं, लिखे जु हिरदै मांहि ।
डरता पाणी ना पीऊँ , मति वै धोये जाहि ।।5।।

भावार्थ – कितने सारे गोविन्द के गुण मेरे हृदय में लिखे हुए हैं, कोई गिनती नहीं उनकी । पानी मैं डरते–डरते पीता हूँ कि कहीं वे गुण धुल न जायं ।

निदक नेडा राखिये, आंगणि कुटी बंधाइ ।
बिन साबण पाणी बिना, निरमल करै सुभाइ ।।6।।

भावार्थ – अपने निन्दक को अपने पास ही रखना चाहिए,
आंगन में उसके लिए कुटिया भी बना देनी चाहिए ।

84

क्योंकि वह सहज ही बिना साबुन और बिना पानी के धो–धोकर निर्मल बना देता है ।

न्यंदक दूर न कीजिये, दीजै आदर मान ।
निरमल तन मन सब करै, बकि बकि आनंहि आन ।।7।।

भावार्थ – अपने निन्दक को कभी दूर न किया जाय, आँखों में ही उसे बसा लिया जाय ।
उसे मान–सम्मान दे दिया जाय। तन और मन को, क्योंकि वह निर्मल कर देता है ।
निन्दा कर–कर अवसर देता है हमें अपने आपको देखने–परखने का ।

`कबीर' आप ठगाइए और न ठगिये कोइ ।
आप ठग्यां सुख ऊपजै, और ठग्यां दुख होइ ।।8।।

भावार्थ – कबीर कहते हैं ––

खुद तुम भले ही ठगाये जाओ, पर दूसरों को नहीं ठगना चाहिए ।
खुद के ठगे जाने से आनन्द होता है, जब कि दूसरों को ठगने से दुःख ।

`कबीर' घास न नींदिए, जो पाऊँ तलि होइ ।
उडि पडै जब आँखि मैं, बरी दुहेली होइ ।।9।।

85

भावार्थ – कबीर कहते हैं –पैरों तले पडी हुई घास का भी अनादर नहीं करना चाहिए ।
एक छोटा–सा तिनका भी उसकी आँख में यदि पड गया, तो बडी मुश्किल हो जायगी ।

करता केरे बहुत गुण, औगुण कोई नांहि ।

जो दिल कोजौं आपणौं, तौ सब औगुण मुझ माहि ||10||
भावार्थ – सिरजनहार में गुण–ही–गुण हैं, अवगुण एकभी नहीं |
अवगुण ही देखने हैं, तो हम अपने दिल को ही खोजें |

खूंदन तौ धरती सहै, बाढ सहै बनराइ |
कुसबद तौ हरिजन सहै, दूजै सह्या न जाइ ||11||
भावार्थ – धरती को कितना ही खोदो–खादो, वह सब सहन कर लेती है | और नदी तीर के वृक्ष बाढ को सह लेते हैं |
कटु वचन तो हरिजन ही सहते है, दूसरों से वे सहन नहीं हो सकते |

सीतलता तब जाणियें ,समिता रहै समाइ |
पष छाँडै निरपष रहै, सबद न देष्या जाइ ||12||
भावार्थ – हमारे अन्दर शीतलता का संचार हो गया है, यह समता आ जाने पर ही जाना जा सकता है | पक्ष–अपक्ष छोडकर जबकि हम निष्पक्ष हो जायं | और कटुवचन जब अपना कुछ भी प्रभाव न डाल सकें |

`कबीर' सिरजनहार बिन, मेरा हितू न कोइ |
गुण औगुण बिहडै नहीं, स्वारथ बंधी लोइ ||13||
भावार्थ – कबीर कहते हैं – मेरा और कोई हितू नहीं सिवा मेरे एक सिरजनहार के |
मुझ में गुण हो या अवगुण, वह मेरा कभी त्याग नहीं करता |
ऐसा तो दुनियादार ही करते हैं स्वार्थ में बँधे होने के कारण |

साई एता दीजिए, जामें कुटुंब समाइ |
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाइ ||14||
भावार्थ – ऐ मेरे मालिक ॐ तू मुझे इतना ही दे, कि जिससे एक हद के भीतर मेरे कुटुम्ब की जरूरतें पूरी हो जायं |
मैं भी भूखा न रहूँ, और जब कोई भला आदमी द्वार पर आ जाय, तो वह भूखा ही वापस न चला जाय |

नीर पियावत क्या फिरै, सायर घर–घर बारि |
जो त्रिषावन्त होइगा, सो पीवेगा झखमारि ||15||

87

भावार्थ – क्या पानी पिलाता फिरता है घर–घर जाकर ?
अन्तर्मुख होकर देखा तो घर–घर में, घट–घट में, सागर भरा लहरा रहा है |
सचमुच जो प्यासा होगा, वह झख मारकर अपनी प्यास बुझा लेगा |
[आत्मानन्द का सागर सभी के अन्दर भरा पडा है | `तृषावंत' से तात्पर्य है सच्चे तत्त्व–जिज्ञासु से |]

हीरा तहाँ न खोलिये, जहँ खोटी है हाटि |
कसकरि बाँधो गाठरी, उठि करि चालौ बाटि ||16||
भावार्थ – जहाँ खोटा बाजार लगा हो, ईमान–धरम की जहाँ पूछ न हो ,

वहाँ अपना हीरा खोलकर मत दिखाओ |पोटली में कसकर उसे बन्द करलो और अपना रास्ता पकडो |

[हीरा से मतलब है आत्मज्ञान से। `खोटीहाट' से मतलब है अनधिकारी लोगों से, जिनके अन्दर जिज्ञासा न हो ।]

हीरा परा बजार में, रहा छार लपिटाइ ।
ब तक मूरख चलि गये, पारखि लिया उठाइ ।।17।।

भावार्थ – हीरा योंही बाजार में पडा हुआ था – देखा और अनदेखा भी, धूल मिट्टी से लिपटा हुआ । जितने भी अपारखी वहाँ से गुजरे, वे यों ही चले गये । लेकिन जब सच्चा पारखी वहाँ पहुँचा तो उसने बडे प्रेम से उसे उठाकर गंठिया लिया

सब काहू का लीजिए, सांचा सबद निहार ।
पच्छपात ना कीजिए, कहै`कबीर' बिचार ।।18।।

भावार्थ – कबीर खूब विचारपूर्वक इस निर्णय पर पहुँचा है कि जहाँ भी, जिसके पास भी सच्ची बात मिले उसे गांठ में बाँध लिया जाय पक्ष और अपक्ष को छोडकर ।

क्या मुख लै बिनती करौं, लाज आवत है मोहि ।
तुम देखत औगुन करौं, कैसे भावों तोहि ।।19।।

भावार्थ – सामने खडा हूँ तेरे, और चाहता हूँ कि विनती करूँ । पर करूँ तो क्या मुँह लेकर, शर्म आती है मुझे । तेरे सामने ही भूल–पर–भूल कर रहा हूँ और पाप कमा रहा हूँ । तब मैं कैसे, मेरे स्वामी, तुझे पसन्द आऊँगा ?

सुरति करौ मेरे साइयां, हम हैं भौजल माहि ।
आपे ही बहि जाहिगे, जौ नहि पकरौ बाहि ।।20।।

भावार्थ – मेरे साईं ॐ हम पर ध्यान दो, हमें भुला न दो ।भवसागर में हम डूब रहे हैं। तुमने यदि हाथ न पकडा तो बह जायंगे । अपने खुद के उबारे तो हम उबर नहीं सकेंगे ।

: इति ः